प्रतिवेद्य

समक्ष भारतीय सर्वोच्च न्यायालय

सिविल अपीलीय न्यायक्षेत्र

सिविल अपील संख्याएँ 5740–5741/2015

त्रिजुगी नारायन (मृत)
विधिक प्रतिनिधियों एवं अन्य द्वारा .....अपीलार्थी(गण)

बनाम

संकू (मृत)
विधिक प्रतिनिधियों एवं अन्य .....प्रत्यर्थी(गण)

निर्णय

न्यायमूर्ति, संजीव खन्ना,

द्वितीय अपील सं. 1930/1983 {*चंद्र नाथ काला (डी) विधिक प्रतिनिधियों द्वारा बनाम त्रिजुगी नारायण (डी) विधिक प्रतिनिधियों द्वारा एवं*

अन्य} और द्वितीय अपील सं. 2017/1983 {*संकू एवं अन्य बनाम त्रिजुगी नारायण (डी) विधिक प्रतिनिधियों द्वारा एवं अन्य*} के वाद में मा. उच्च न्यायालय के न्यायक्षेत्र इलाहाबाद द्वारा दिनांकित 12 सितंबर 2008 को पारित ये सिविल अपील सामान्य निर्णय और डिक्री से उत्पन्न हैं।

2. वर्तमान अपीलों में उठाया गया मुद्दा संपत्ति के प्रकृति से संबंधित है, अर्थात्, क्या प्लॉट सं. 16 (पुराना प्लॉट सं. 9), चौखंडी कीडगंज, इलाहाबाद – नज़ूल प्लॉट (संक्षेप में 'संपत्ति') में सर्वकालिक पट्टे पर अधिकार सहदायिकी संयुक्त हिंदू परिवार की संपत्ति थी अथवा मैहर राज्य की जागीर का एक हिस्सा होने के चलते, स्व–अर्जित और अलग संपत्ति के अन्तर्गत था।

3. विवाद को यथाक्रम विनिश्चित करने में, हम तथ्यों को संक्षेप में अभिलिखित करेंगे।

क. दिनांक 12 सितंबर 1873 को बच्चू लोनिया ने सरकार द्वारा निष्पादित सर्वकालिक पट्टे के विलेख के माध्यम से संपत्ति का अधिग्रहण किया था। बच्चू लोनिया की मृत्यु के पश्चात, दिनांक 12 अगस्त 1896 को उनके पुत्र रामभरोसे ने एक पंजीकृत बिक्री विलेख के माध्यम से मैहर राज्य के तत्कालीन महाराजा रघुबीर सिंह को सर्वकालिक पट्टे के अधिकार हस्तांतरित कर दिए थे।

ख. तत्पश्चात, बृज नाथ सिंह मैहर राज्य के सिंहासन/*गद्दी* पर आसीन हुए। बृज नाथ सिंह ने दिनांकित 11 फरवरी, 1966 को अभिलिखित वसीयत के माध्यम से अपनी पहली पत्नी सुरेंद्र कुमारी के बड़े बेटे गोविंद सिंह और उनकी दूसरी पत्नी रानी तेज कुमारी के पुत्र के लिए

उनके जीवनकाल के दौरान उसके रखरखाव के लिए प्रावधान करने के बाद संपत्ति सहित बाकी संपत्तियों को मैहर के महल और राज्य भत्ते (प्रिवी पर्स) को वसीयत में रखा था। दिनांक 13 अक्टूबर 1968 को बृज नाथ सिंह की मृत्यु हो गई थी।

ग. इस वसीयत के बावजूद, बृज नाथ सिंह की पहली पत्नी के बड़े बेटे गोविंद सिंह, संयुक्त हिंदू परिवार के पेशवा और कर्ता के रूप में, पंजीकृत बिक्री विलेख के माध्यम से दिनांकित 18 नवंबर 1968 को त्रिजुगी नारायण दुबे और सुरेंद्र नाथ प्रयागवाल को संपत्ति बेच दी थी।

घ. दिनांक 20 नवंबर 1968 को, चंद्र नाथ काला और संकू ने पिछले तीस सालों से संपत्ति पर अधिकार का दावा करते हुए त्रिजुगी नारायण और सुरेंद्र नाथ के विरूद्ध स्थायी निषेधाज्ञा के लिए मूल वाद सं. 194/1968 की संस्थित किया था। उसके पश्चात, उन्होंने वादपत्र के संशोधन के लिए एक अर्जी दायर की थी क्योंकि रानी तेज कुमारी के पावर ऑफ अटॉर्नी धारक विमल कुमार सिंह ने चंद्र नाथ काला के पक्ष में दिनांक 6 जून 1969 को संपत्ति का बिक्री विलेख निष्पादित किया था, परीक्षण बिक्री विलेख के आधार पर दावा करने वाले संशोधन के शीर्षक के लिए सत्र न्यायालय द्वारा आवेदन की अनुमति दी गई थी। हालांकि, संशोधनों को मंजूरी देने वाला यह आदेश मा. उच्च न्यायालय द्वारा दिनांकित 10 दिसंबर 1971 को अपास्त कर दिया गया।

ङ. तब दिनांक 7 मार्च 1972 को चंद्र नाथ काला ने त्रिजुगी नारायण और सुरेंद्र नाथ के खिलाफ घोषणा और निषेधाज्ञा के लिए मूल वाद सं. 64/1972 संस्थित किया था, जिसमें संकू को तीसरे प्रतिवादी के रूप जोड़ते हुए विक्रय विलेख पर उसके अधिकार का प्रतिपादन

दिनांकित 6 जून 1969 को रानी तेज कुमारी द्वारा उसके पक्ष में निष्पादित किया गया था। संकू ने चंद्र नाथ काला के दावे को स्वीकार किया, जबकि त्रिजुगी नारायण और सुरेंद्र नाथ ने परस्पर लिखित बयान दायर किया था, जिसमें कहा गया था कि बृज नाथ सिंह को रानी तेज कुमारी के नाम पर वसीयत को निष्पादित करने का कोई अधिकार नहीं था यद्यपि यह संयुक्त हिंदू परिवार की सहदायिकी संपत्ति थी। आगे, गोविंद सिंह परिवार के कर्ता थे, जिन्होंने वैध रूप से त्रिजुगी नारायण और सुरेंद्र नाथ के पक्ष दिनांकित 18 नवंबर 1968 को बिक्री विलेख में निष्पादित किया था।

4. सत्र न्यायालय ने दोनों वादों को अलग –अलग निर्णय द्वारा खारिज कर दिया, दोनों ने दिनांकित 25 मार्च 1983 को कई मुद्दों का संदर्भ दिया जिसमें अपीलकर्ताओं द्वारा उठाए गए सीमित चुनौती के दृष्टिगत आवश्यक नहीं है, यद्यपि यह माना गया था कि बृज नाथ सिंह का वसीयत के द्वारा संयुक्त हिन्दू परिवार से सम्बन्धित सम्पत्ति का उत्तरदायन नहीं हो सकता और इसलिए, रानी तेज कुमारी द्वारा निष्पादित बिक्री विलेख दिनांकित 6 जून 1969 को शून्य हो गया क्योंकि उनके पास कोई हक नहीं था। आगे, गोविंद सिंह संयुक्त हिंदू परिवार के कर्ता के रूप में त्रिजुगी नारायण और सुरेंद्र नाथ के पक्ष में स्थानांतरण द्वारा संपत्ति का लाभ और पूर्णतया विधिक था। वाद सं. 194/1968 को इस आधार पर खारिज कर दिया गया था कि चंद्र नाथ काला और संकू प्रतिकूल कब्जे द्वारा किसी भी अधिकार के अधिग्रहण को साबित करने में विफल रहे थे।

5. निर्णय और डिक्री के विरूद्ध दायर की गई सिविल अपील सं. 476/1983 के वाद सं. 194/1968 में अपर जिला न्यायाधीश, इलाहाबाद के निर्णय द्वारा दिनांकित 25 अगस्त 1983 को खारिज कर दिया गया था। उसी तारीख के एक पृथक निर्णय के द्वारा, सिविल अपील सं. 517/1983 को वाद सं. 64/1972 में निर्णय और डिक्री के विरूद्ध दी गयी वरीयता को खारिज किया गया था, अन्य बातों के साथ, यह अभिलिखित करते हुए कि मैहर राज्य का 1948 में अस्तित्व का स्थगन हो गया था, और इसलिए अधिनिर्णीत को नियंत्रित करने वाले ज्येष्ठता का सिद्धांत (प्राइमोगेनिचर का नियम) लागू होना बंद हो गया था। फलस्वरूप, गोविंद सिंह को अपने पिता से विरासत में मिली संपत्ति का विधिक अधिकार बृज नाथ सिंह द्वारा वसीयत का निष्पादन करने में नहीं लिया जा सकता था, गोविंद सिंह को केवल महल और राज्य भत्ते (प्रिवी पर्स) और रानी तेज कुमारी को बाकी संपत्तियां दे दी गई थीं।

6. मा. उच्च न्यायालय ने दिनांकित 12 सितंबर 2008 को दिए गए सामान्य आक्षेपित निर्णय से, दो जुड़ी हुई अपीलों में, सत्र न्यायालय और अपीलीय न्यायालय के निष्कर्षों को उलट दिया, अन्य बातों के साथ, यह मानते हुए कि संपत्ति ज्येष्ठता का सिद्धांत(प्राइमोगेनिचर का नियम) के द्वारा शासित अचल संपत्ति का एक हिस्सा थी। तदनुसार, गोविंद सिंह सहित संयुक्त हिंदू परिवार के किसी भी सदस्य का जन्म से संपत्ति में कोई अधिकार नहीं था। बृज नाथ सिंह संपत्ति का वसीयत करने के लिए पूर्णतः हकदार थे, जो उन्होंने दिनांक 11 फरवरी 1966 को रानी तेज कुमारी के पक्ष में किया।

7. हम उठाए गए प्रश्न को परस्पर दो भागों में विभाजित करते हैं। सबसे प्रथम, हमारे द्वारा ज्येष्ठता का सिद्धांत (प्राइमोगेनिचर का नियम) के अन्तर्गत किसी संपत्ति की उत्तराधिकार और उत्तराधिकार से संबंधित प्रथागत विधि की जाँच किया जाना अपेक्षित है, और क्या यह संपत्ति पर लागू था। दूसरा पहलू भारत के स्वतंत्र उपनिवेश और हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 (संक्षिप्ततः 'उत्तराधिकार अधिनियम') का अधिनियमन के साथ बृज नाथ सिंह द्वारा प्रसंविदा और विलय समझौते पर इंगित करने के साथ संप्रभु सर्वश्रेष्ठता की त्रुटि के विधिक प्रभाव से संबंधित है। दूसरे शब्दों में, क्या पूर्व शासक के अविभाज्य सम्पत्ति के विलय समझौते या उत्तराधिकार अधिनियम के अधिनियमन होने पर, अविभाज्य संपत्ति के रूप में जारी रहना बंद हो गए थे और संयुक्त हिंदू परिवार की सहदायिकी संपत्ति में परिवर्तित हो गए थे। प्रश्न का फैसला करते हुए, हम अपीलार्थीगणों के इस तर्क की भी जांच करेंगे कि नज़ूल भूमि पर होने वाले सर्वकालिक पट्टे के अधिकार को शासक की निजी संपत्ति के रूप में रखा गया था और वह रघुबीर सिंह और बृज नाथ सिंह की संप्रभु या राज्य संपत्तियों का हिस्सा नहीं थे।

8. इस बात को तय करने के लिए, हमें प्रथमतः संयुक्त हिंदू परिवार और सहदायिकी के बीच भिन्नता पर ध्यान देना चाहिए। सहदायिकी, जैसा कि ***सुरजीत लाल छाबड़ा बनाम कमिश्नर ऑफ इनकम टैक्स, बॉम्बे*** ((1976) 3 SCC 142) के मामले में अवलोकित किया गया है, संयुक्त हिंदू परिवार की अपेक्षा एक संकुचित निकाय है। मिताक्षरा हिंदू कानून के तहत, किसी भी हिंदू पुरूष को अपने पिता, पिता के पिता या पिता के पिता के पिता से विरासत में मिली संपत्ति पैतृक संपत्ति है। उपरोक्त तरीके से विरासत में संपत्ति पाने वाले

पुरुष वंशज ने संपत्ति को बिल्कुल एक पृथक संपत्ति के रूप में विरासत में नहीं, परन्तु सहदायिकी संपत्ति के रूप में दिया। सहदायिकी में केवल वे व्यक्ति शामिल होते हैं जो जन्म से ही सहदायिकी संपत्ति में रुचि रखते हैं। सहदायिकी संपत्ति की उत्तरजीविता उत्तराधिकार में है। कोई भी सहदायिक अन्य सहदायिकों की सहमति के सिवाय उपहार के माध्यम से अपने अविभाजित सहदायिकी ब्याज को निस्तारित नहीं कर सकता। सहदायिकी संपत्ति के विलगाव पर निर्बंधन हैं, जो कि तभी वैध होगा जब यह सम्पूर्ण वयस्क सहदायी निकाय के द्वारा किये गये हों, कर्ता/प्रबंधक सीमाओं/शर्तों के अधीन पिता, और कुछ परिस्थितियों में एकमात्र उत्तरजीवित सहदायिक द्वारा (देखें मुल्ला हिंदू लॉ, 22 वाँ संस्करण, 2016 पृष्ठ 397 पर, § 253– *सहदायिक संपत्ति का विलगाव कौन कर सकता है* ')।

9. सहदायिकी के सीमाओं से परे, पुरुष और महिला दोनों का एक समूह होता है, जो अविभाजित या संयुक्त परिवार का गठन करते हैं, जिसमें एक पूर्वज से पैतृक वंशज और इसमें उनकी पत्नियां और अविवाहित पुत्रियाँ शामिल होती हैं। इस प्रकार, संयुक्त हिंदू परिवार, एक बड़ा निकाय है, जो उन वयक्तियों के समूह से बनता है जो जन्म, विवाह या दत्तक ग्रहण द्वारा उत्पन्न होने वाले *सपिण्ड* के बंधन से युक्त होते हैं। एक व्यक्ति जो संयुक्त हिंदू परिवार का सदस्य है, वह पृथक या व्यक्तिगत संपत्ति धारित कर सकता है और इसके अतिरिक्त, यदि वह एक सहदायिक है, तो संयुक्त हिंदू परिवार की सहदायिक संपत्ति में रुचि है।

10. हालांकि, दिनांक 17 जून 1956 से उत्तराधिकार अधिनियम के लागू होने के साथ, 17 जून 1956 के बाद घटने वाली मृत्यु की घटना में

निर्वसीयत उत्तराधिकार के द्वारा विरासत में मिली कोई भी संपत्ति पूर्ण अथवा व्यक्तिगत संपत्ति है और पैतृक संपत्ति नहीं है। वर्तमान वाद में, हमारा किसी सहदायिक की मृत्यु पर मौजूदा सहदायिकी संपत्ति के वैचारिक विभाजन से सरोकार नहीं हैं, दिनांक 9 सितंबर 2005 से प्रभावी रूप से लागू अधिनियम सं. 39/2005 के माध्यम से उत्तराधिकार अधिनियम में किए गए संशोधनों या उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 30 के माध्यम से अपने अविभाजित ब्याज के सहदायिक वसीयत का निष्पादन होता है।

11. एक संपत्ति यद्यपि विरासत में मिली हो और पैतृक हो , जिसका विभाजन प्रथा और उत्तराधिकार द्वारा निषिद्ध है, जहाँ सामान्यतः ज्येष्ठता का सिद्धांत (प्राइमोगेनिचर का नियम) द्वारा 'अविभाज्य संपत्ति' के रूप में संदर्भित किया जाता है। एक अविभाजित संपत्ति अनिवार्य रूप से प्रथा की एक सृजन है, यद्यपि अनुदान की शर्तों की उत्पत्ति द्वारा भी , एक संविधि अथवा एक परिवार के समझौते के लिए मूल को छोड़ सकता है। ज्येष्ठता का सिद्धांत (प्राइमोगेनिचर का नियम) के गुण आधार पर, सबसे बड़ा या पहला पुत्र अपने छोटे भाइयों के अपवर्जन के लिए गत धारक की संपत्ति के लिए सफल होता है। पैतृक पुरुष ज्येष्ठता का सिद्धांत (प्राइमोगेनिचर का नियम) के अन्तर्गत भी उत्तराधिकार हो सकता है, जिसका अर्थ है कि वंशधर की बड़ी शाखा के सबसे बड़े पुरुष सदस्य का लगातार वंशज होगा। अविभाज्य संपत्ति के बीच का वैशिष्ट्य , जिसके लिए ज्येष्ठता का सिद्धांत (प्राइमोगेनिचर का नियम) लागू होता है, और सहदायिकी संपत्ति को ***शीबा प्रसाद सिंह*** बनाम ***रानी प्रयाग कुमारी देबी एवं अन्य*** [2] (AIR 1932 PC 216) में निम्नानुसार उद्धृत किया गया है:

"अविभाज्यता अनिवार्य रूप से प्रथा का एक सृजन है। साधारण संयुक्त परिवार की संपत्ति के मामले में, परिवार के सदस्यों के पास : (1) विभाजन का अधिकार; (2) आवश्यकता के सिवाय परिवार के मुखिया द्वारा हस्तांतरण पर नियंत्रण करने का अधिकार; (3) रखरखाव का अधिकार; और (4) उत्तरजीविता का अधिकार है। इनमें प्रथम अधिकार में संपत्ति की प्रकृति से, यद्यपि एक पैतृक संपत्ति के मामले में मौजूद नहीं हो सकती है। दूसरा, *सरताज कुआरी* के मामले और *राम कृष्ण बनाम वेंकट कुमार* के रूप में प्रतिपादित अविभाज्यता की प्रथा के साथ असंगत है, और इसलिए तीसरा भी *गंगाधर बनाम राजा ऑफ पित्तापुर* के में अवधारित किया गया। इस सीमा तक, मिताक्षरा के सामान्य विधि को प्रथा और अविभाज्य संपत्ति द्वारा अतिष्ठित किया गया है, यद्यपि पैतृक, स्व–अधिगृहीत और पृथक संपत्ति के साथ आवरित है। लेकिन उत्तरजीविता का अधिकार अविभाज्यता की प्रथा के साथ असंगत नहीं है। इसलिए उनका अधिकार अभी भी अवशेष है, और यही *बैजनाथ* के वाद में अवधारित किया गया था। इस सीमा तक भू–संपत्ति अभी भी संयुक्त परिवार की संपत्ति अपने स्वरूप को कायम रखती है, और इसके हस्तांतरण को ऐसी संपत्ति पर लागू सामान्य मिताक्षरा कानून द्वारा नियंत्रित किया जाता है। यद्यपि संयुक्त परिवार की संपत्ति में जन्म से एक सहदायिक को जो अन्य अधिकार प्राप्त होते हैं, वे अब मौजूद नहीं हैं, लेकिन उत्तरजीविता के लिए वरिष्ठ सदस्य का जन्मसिद्ध अधिकार अभी भी बना हुआ है। न तो यह अधिकार, हिन्दू विधवा की मृत्यु पर उसके पति की सम्पत्ति का वारिस होने वाले उत्तरभोगी के अधिकार के समान, एक *संभाव्य उत्तराधिकारी* मात्र है।"

12. उपरोक्त अंश में ***शिबा प्रसाद सिंह(उपरोक्त)*** को इस न्यायालय के कई निर्णयों में अनुमोदन के साथ उद्धृत किया गया है, जिसमें ***ठाकोरे श्री विनयसिंहजी(मृत) द्वारा एलआरएस. बनाम कुमार श्री नटवरसिंहजी और अन्य*** [3] ((1988) Supp. SCC 133) शामिल हैं। जहाँ यह निम्नानुसार अवलोकित किया गया है:–

"अविभाज्य संपत्ति, यद्यपि पैतृक, स्व–अधिगृहीत और पृथक संपत्ति की घटनाओं से आवरित है, सिवाय उत्तरजीविता के अधिकार को छोड़कर, जो कि अविभाज्यता की प्रथा के साथ असंगत नहीं है....."

13. इसलिए, यह अच्छी तरह से स्थापित है कि एक अविभाज्य संपत्ति को स्व–अर्जित और पृथक संपत्ति की घटनाओं के साथ आवरित है। अविभाज्य सम्पत्ति यहाँ तक कि वंशागत और पैतृक संपत्ति, सहदायिकी द्वारा सहदायिकी सम्पत्ति के हिस्से के रूप में अवधारित नहीं की गई हो, क्योंकि सहदायिक अथवा संयुक्त हिंदू परिवार के सदस्यों को विभाजन का अधिकार नहीं है या हस्तांतरण पर नियंत्रण का अधिकार नहीं है। यद्यपि उत्तरजीविता का अधिकार, अविभाज्य संपत्ति की प्रथा के साथ असंगत नहीं है, हालाँकि यह मिताक्षरा हिन्दू विधि के अन्तर्गत उत्तराधिकार के सामान्य नियम से अलग है जहां पिता की सम्पत्ति में उसके सभी पुत्र बराबर की हिस्सेदारी के हकदार हैं, उत्तराधिकार के कानून के लिए जब ज्येष्ठता का सिद्धांत (प्राइमोगेनिचर का नियम) लागू होता है, तो यह कि जन्म लेने वाला प्रथम पुत्र संपूर्ण संपत्ति को अन्य पुत्रों के अपवर्जन में सफल होता है।

14. जैसा कि ऊपरोक्त में अवलोकित किया गया है , एक संपत्ति की अविभाज्यता और ज्येष्ठता (प्राइमोगेनिचर) का उद्भव प्रथा सहित चार रूपों में हो सकती है। न्यायिक दृष्टांत हैं कि अविभाज्य संपत्ति की प्रथा को स्वीकार और मानते हुए कि ज्येष्ठता का सिद्धांत (प्राइमोगेनिचर का नियम) राजसत्ता का शासन सभी रियासतों में उत्तराधिकार का एक सामान्य नियम था। हमें इस प्रथा की न्यायिक सूचना लेना चाहिए, जो साक्ष्य अधिनियम 1872 की धारा 48 के माध्यम से राजोचित राज्य पर लागू होता है। लेफ्टिनेंट कर्नल जेम्स टॉड ने अपने कार्य को *' एनल्स एंड एंटीक्विटीज ऑफ राजस्थान'* [4] (Oxford University Press, 1920. Reprinted in 1978 by M.N. Publishers, New Delhi) शीर्षक के पृष्ठ 307 में कहा है:–

".....ज्येष्ठता का सिद्धांत (प्राइमोगेनिचर का नियम) सभी राजपूत संप्रभुता में व्याप्त है; दुर्लभ उदाहरण जिसमें इसे अपास्त किया गया है, केवल नियम के अपवाद हैं।"

न्यायमूर्ति जी.के. मित्तर ने ***माधव राव जीवाजी राव सिंधिया बनाम भारत संघ और अन्य*** [5] ((1971)1 SCC 85) के अपने निर्णय में अवलोकित किया था:

"अपरिवर्तनीय रूप से ऐसा प्रतीत होता है कि पैतृक पुरूष ज्येष्ठता का सिद्धांत (प्राइमोगेनिचर का नियम) एक पुत्र के अपनाने की प्रथा के साथ युग्मित है जो हिंदू शासकों के मामले में जो शरीर के ढेर के साथ पृकृतिस्थ है।"

बाबू गुनेश दत्त सिंह बनाम महाराजा मोहेशुर सिंह [6] ((1854–7) MIA 164 : 1 Sar PCJ 521) के मामले में, इसे निम्नानुसार उद्धृत किया गया था:

"हम इस बात को आशंका करते हैं कि जिस सिद्धांत पर हम इस मामले में आगे बढ़ने वाले हैं वह बिना किसी संदेह या प्रश्न के स्वीकार करता है। इस जिले में प्रचलित सामान्य कानून द्वारा, और वास्तव में आमतौर पर हिंडू कानून के तहत, बेटों के बीच संपत्ति का विभाजन होता है, इस जनपद में प्रचलित सामान्य कानून द्वारा, और वास्तव में आमतौर पर हिंदू विधि के अन्तर्गत, जब एक से अधिक पुत्र होते हैं; तो पुत्रों के बीच संपत्ति का विभाजन होता है, वे बड़े पुत्र को ही नहीं प्राप्त हैं, परन्तु सभी के बीच विभाज्य हैं। एक रियासत के रूप में एक राज के सम्बन्ध में , सामान्य नियम अन्यथा है, और ऐसा होना चाहिए। इसमें कोई संदेह नहीं है कि यह एक संप्रभुता, एक रियासत, एक अधीनस्थ संप्रभुता और रियासत है, लेकिन फिर भी एक सीमित संप्रभुता और रियासत है, जो अपनी प्रकृति में विभाजन के विचार को उस अर्थ में शामिल नहीं करता है जिसमें उस शब्द का उपयोग वर्तमान मामले में किया जाता है।"

15. ***प्रताप सिंह बनाम सरोजिनी देवी एवं अन्य*** [7] ((1994) Supp 1 SCC 734) *के संदर्भ में* **बाबू गणेश दत्त सिंह(उपरोक्त)** के फैसले का उल्लेख किया गया था

और न्यायमूर्ति मित्तर की राय ***माधव राव जीवाजी राव सिंधिया(उपरोक्त)*** में यह अवधारित किया गया:

> "65. यद्यपि, जमींदारी सम्पदा या अन्य अविभाज्य सम्पत्ति के संबंध में निष्पक्षता और प्रधानता प्रथा द्वारा स्थापित होती है, एक संप्रभु शासक के मामले में, उन्हें अस्तित्व में प्रकल्पित किया जाता है।"

प्रताप सिंह **(उपरोक्त)** में इस न्यायालय ने उपरोक्त सिद्धांतों को दोहराया है और यह भी अवलोकित किया है कि संप्रभु शासक के मामले में अविभाज्य संपत्ति और ज्येष्ठता का सिद्धांत (प्राइमोगेनिचर का नियम) के आवेदन को अस्तित्व में रखा जाना चाहिए, जबकि ज़मींदारी संपत्ति या किसी अन्य अविभाज्य संपत्ति के मामले में ज्येष्ठता का सिद्धांत (प्राइमोगेनिचर का नियम) को प्रथा के माध्यम से स्थापित किया जाना चाहिए।

16. शासक के पास संप्रभु के रूप में संबंधित कोई भी संपत्ति, जो ज्येष्ठता का सिद्धांत (प्राइमोगेनिचर का नियम) के आवेदन से उत्तरजीविता द्वारा उत्तराधिकार पर न्यायगत होगी, एक सहदायिकी संपत्ति की घटना वहन नहीं होगी। संपत्ति एक व्यक्ति से संबंधित थी, अर्थात, संप्रभु शासक की अंतर्हित संप्रभुता की अवधारणा के रूप में पूर्ण प्राधिकारी, शक्ति और स्वामित्व को किसी अन्य व्यक्ति द्वारा विभाजन या निषेधाज्ञा की कानूनी कार्रवाई के अधीन नहीं किया जा सकता है। फलस्वरूप, संप्रभु शासक की सम्पदाएं/संपत्तियां के अविभाज्य होने के बावजूद पैतृक थीं। जिन पुरुष सदस्यों के पास उत्तरजीविता का अधिकार था, वे विभाजन के अधिकार अथवा संप्रभु शासक द्वारा हस्तांतरण को नियंत्रण करने के अधिकार का दावा नहीं कर सकते थे क्योंकि उनके पास कोई प्रवर्तनीय अधिकार नहीं था जिसे विधिक रूप से उपचारित किया जा सकता था। संक्षेप में, सहदायिकी

के पुत्रों अथवा अन्य सदस्यों का अधिकार या हित संप्रभुता के साथ असंगत था क्योंकि एक संप्रभु शासक को नगरपालिका विधि और नगर निगम न्यायालयों के अधीन नहीं किया जा सकता था। सिविल अपील सं. 226/ 1965 के महंत हरदियाल सिंह बनाम अजमेर सिंह के एक अप्राप्य निर्णय में पटियाला के महाराजा की शक्तियों के संबंध में 20 नवंबर 1968 को निर्णय लिया गया था, इस न्यायालय ने अवलोकित किया था:–

> "हमारा विचार है कि यह अपील छोटे आधार पर विफल होना चाहिए कि सेठ बनारसी दास के पक्ष में बिक्री उनके महामहिम पटियाला के महाराजा द्वारा किए गए आदेशों के दृष्टिगत नहीं की जा सकती है। यह स्मरण रखना चाहिए कि जिस समय लेन–देन हुआ, उस समय पटियाला एक देशी राज्य था और महाराजा अनियंत्रित संप्रभु शक्तियों का आनंद लेते थे। उस समय वह सर्वोच्च विधायिका, सर्वोच्च न्यायपालिका और कार्यपालिका के सर्वोच्च प्रमुख थे किसी भी सामर्थ्य में कार्य करने के लिए उसके अधिकार पर कोई संवैधानिक सीमा नहीं थी। उनके आदेश संप्रभु इच्छा की अभिव्यक्ति थे और वे किसी अन्य विधि की भाँति ही बाध्यकारी थे, नहीं, वे अन्य सभी कानूनों को अधिरोहण कर देंगे जो उनके साथ विरोध में थे। जब तक उनके आदेश में यह क्षेत्र था कि अकेले ही संबंधित पक्षों के अधिकारों को नियंत्रित या विनियमित करेगा, यद्यपि यह किसी भी समय उनके द्वारा रद्द या संशोधित किया जा सकता था। ”

अतः, अविभाज्य सम्पत्ति से संबंधित प्रथा और ज्येष्ठता का सिद्धांत (प्राइमोगेनिचर का नियम) के अनुसार, एक रियासत का राजा या शासक संपत्ति को कर्ता या सहदायिक के रूप में अवधारित नहीं करेगा, परन्तु पूर्ण मालिक और संपत्ति के रूप में अविभाज्य होगा। पुत्र(गण) जन्म के समय न तो अविभाज्य संपत्ति में कोई दिलचस्पी लेगा और न ही विभाजन को अवरूद्ध कर सकता है। शासक की मृत्यु होने पर, राजतंत्र के उत्तराधिकार के रूप में, यह भी कि अविभाज्य संपत्ति, जीवित रहने के मिताक्षरा विधि के अन्तर्गत नहीं थी, लेकिन ज्येष्ठता का सिद्धांत (प्राइमोगेनिचर का नियम) द्वारा शासित थी। हालांकि, अन्य को अनुरक्षण प्रदान करने के लिए नैतिक

दायित्व था, चाहे वह छोटे भाई या परिवार के सदस्य हों, जो बाद में प्रथा के माध्यम से, वस्तुतः एक दायित्व बन गए।

17. ***वेंकट सूर्य महिपति राम कृष्ण राव बहादुर*** बनाम ***कोर्ट ऑफ़ वॉर्ड्स और अन्य***[8] ((1899) LR 26 Ind App 83) में प्रिवी काउंसिल ने पूर्व के वाद विधि का संदर्भ देते हुए अवधारित किया था कि एक अविभाजित संपत्ति का धारक जीवित व्यक्तियों के बीच एक उपहार के माध्यम से संपत्ति को हस्तांतरित कर सकता है। अथवा यहाँ तक कि वसीयत द्वारा, यद्यपि परिवार अविभाजित है; उनकी शक्ति पर एकमात्र सीमा परिवार की प्रथा के विपरीत, या कार्यकाल की स्थिति से प्रवाहित होती है जिसका समान प्रभाव होता है। ***श्री राजा वेलुगोटी कुमार कृष्णा यचेंद्र वरु और अन्य*** बनाम ***श्री राजा वेलुगोटी सर्वाग्रा कुमार कृष्णा यचेंद्र वरू और अन्य***[9] ((1969) 3 SCC 281); ***भैया रामानुज प्रताप देव*** बनाम ***लालू महेशानुज प्रताप देव और अन्य***[10] ((1981) 4 SCC 613); ***प्रताप सिंह*** (उपरोक्त) और अन्य मामले में उपरोक्त अभ्युक्ति को इस न्यायालय द्वारा स्वीकृति दी गई है।

18. ***एडवोकेट जनरल ऑफ बॉम्बे*** बनाम ***आमेरचन्द***[11] (12ER 340, 345: (1830) 1 Knapp 316,329–30) में लॉर्ड टेंटरडेन ने चर्चा के दौरान पूछा था:

> "एक पूर्ण संप्रभु की सार्वजनिक और निजी संपत्ति के बीच विभेद क्या है? सार्वजनिक संपत्ति से आपका आशय सामान्यतः राज्य की संपत्ति से है, लेकिन एक पूर्ण संप्रभु की संपत्ति में, जो किसी भी समय सब कुछ निपटान कर सकता है, और किसी भी तरह से वह प्रसन्न है, क्या कोई विभेद है?" [...]

लॉर्ड टेंटरडेन ने अपने निर्णय में यह अवलोकन किया:

"दूसरा बिंदु निर्मित किया गया, जो केवल सूचना के एक हिस्से पर ही लागू होता है, वह यह है कि संपत्ति साबित नहीं हुई थी कि वह पेशवा की सार्वजनिक संपत्ति थी। उस बिंदु पर मैंने अपनी राय पहले ही बता दी है, और मुझे इसके साथ परिषद के अन्य गणमान्यों की सहमति है, कि जब आप एक पूर्ण संप्रभु की संपत्ति की बात कर रहे हैं, तो एक विभेद के रेखाचित्र हेतु कोई मिथ्याकथन नहीं है, संपूर्णतः यह उसके लिए संप्रभु के रूप में है, और वह अपने सार्वजनिक या निजी प्रयोजनों के लिए इसका निपटान कर सकता है, चाहे वह किसी भी तरीके से उचित हो।"

19. संप्रभु और राज्य की संपत्ति की विधिक प्रसंगतियों को गुजरात उच्च न्यायालय ने ***डी.एस. मरमवाला भायावाला*** बनाम ***बाई श्री अमर्बा जेठसुरभाई***[12] (1968) 9 GLR 609) में निम्नलिखित शब्दों में समझाया:

"5. [...] एक संप्रभु शासक के रूप में उसका सम्पत्ति पर पूर्णस्वामित्व होगा इसलिए वह अपनी सम्पत्ति के साथ कुछ भी करने का हकदार है। उनके जीवनकाल के दौरान संपत्ति में हक का दावा कोई दूसरा नहीं कर सकता है। ऐसा हक उसकी संप्रभुता के साथ असंगत होगा। यह हक अर्जित करने के लिए कि पुत्रों को सम्पत्ति में जन्म या गोद लेने का अनुदान मिलता है, जो नगरपालिका कानून के अन्तर्गत उद्भूत होने वाला परिणाम है, जो कि प्रमुख को नगर पालिका कानून के अधीन संपत्ति का संप्रभु शासक बनाना होगा। इसके अतिरिक्त, यदि पुत्र जन्म या गोद लेने के द्वारा सम्पत्ति अर्जन में हक रखते हैं, तो वे ऊपर प्रगणित अधिकारों का दावा करने के हकदार होंगे, लेकिन वे अधिकार एक संप्रभु संपत्ति में मौजूद नहीं हो सकते। इनमें से कोई भी अधिकार नगरपालिका न्यायालयों में एक उपाय द्वारा प्रमुख के खिलाफ लागू नहीं किया जा सकता है। प्रमुख संप्रभु शासक होने के नाते, इन अधिकारों को प्रवर्तन करने के लिए कोई विधिक मंजूरी नहीं हो सकती है। इन अधिकारों का प्रवर्तन करने का उपचार विधिक उपचार नहीं होगा परन्तु बल का सहारा लेना होगा, क्योंकि संप्रभु शासक नगरपालिका विधि के अधीन नहीं होगा और उसके कार्यों को नगरपालिका न्यायालयों द्वारा नियंत्रित नहीं किया जाएगा। अब ऐसे विधिक अधिकार की कल्पना करना असंभव है जिसका कोई कानूनी उपचार न हो। यदि कोई दावा विधिक रूप से अप्रवर्तनीय है, तो यह एक विधिक अधिकार नहीं होगा और इसलिए, एक संप्रभु संपत्ति की प्रकृति से, पुत्रों के पास ये अधिकार नहीं हो सकते हैं और यदि ये अधिकार पुत्रों में मौजूद नहीं हैं, तो इसका आवश्यक परिणाम के रूप में पालन करना

चाहिए कि पुत्रों को जन्म या गोद लेने के द्वारा संपत्ति में हक अर्जित नहीं है।"

प्रस्तर 14 से 16 (उपरोक्त) में स्पष्ट की गई विधिक स्थिति को ***डी. एस. मरमवाला*** (उपरोक्त) में चिन्हित किया गया था, जिसमें कहा गया है कि पुत्र(गण) के विषय में एक भी उदाहरण नहीं है जहां प्रमुख के जीवनकाल के दौरान संपत्ति के बंटवारे के लिए संपत्ति में हक होने की मान्यता प्राप्त थी। अतः, यह स्पष्ट है कि जब ज्येष्ठता का सिद्धांत (प्राइमोगेनिचर का नियम) लागू होता है, तो पैतृक सहदायिक संपत्ति के सिद्धांत लागू नहीं होंगे। एक अविभाज्य संपत्ति के मामले में, पुत्र(गण) को जन्म द्वारा कोई हक नहीं प्राप्त होगा, एक हिंदू पुत्र के रूप में सहदायिक संपत्ति में जन्म से ही हक रखता है।

20. लॉर्ड टेंटर्डन का विचार उन मामलों में से एक था, जिसे ***रेवथिन्नल बालगोपाल वर्मा*** बनाम ***श्री पद्मनाभ दास बाला राम वर्मा (मृतक) एवं अन्य***[13] ((1993) Supp 1 SCC 233) के मामले में अनुमोदन के साथ उद्धृत किया गया था। आगे इस पहलू को ***रेवथिन्नल बालगोपाल वर्मा*** (उपरोक्त) (देखें प्रस्तर 30) के मामले में न्यायमूर्ति एन.डी. ओझा द्वारा स्पष्ट किया गया था।

21. भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम, 1947 के गमन के साथ, ब्रिटिश प्रयास ने भारतीय साम्राज्य को विदाई दी और राजनीतिक शक्ति का हस्तांतरण किया। भारत का विभाजन भी हुआ था। सवाल यह उठेगा कि क्या विधिक स्थिति को स्वतंत्रता के बाद 15 अगस्त 1947 को इस तथ्य के प्रकाश में बदल दिया था कि रियासतों के शासक ब्रिटिश सर्वोपरिता की चूक के बाद भारतीय संघ में शामिल हो गए थे। अविभाजित भारत में लगभग 4095852 वर्ग किमी. में समाविष्ट थे। ब्रिटिश साम्राज्य का 2241505 वर्ग

किमी. पर सीधा नियंत्रण था, और राजसी या देशी राज्यों में लगभग 565 की संख्या में, 1854346 वर्ग किमी. पर अधिकार था। सत्ता और प्रशासन के हस्तांतरण के अलावा, स्वतंत्र भारतीय संघ में रियासतों का एकीकरण एक जटिल और कठिन कार्य था। जुलाई 1947 में, रियासतों और राज्य मंत्रियों के कई शासकों ने अंतरिम सरकार में गृह मंत्री सरदार वल्लभभाई पटेल से मुलाकात की थी, ताकि उनके भविष्य की स्थिति का निर्धारण और चर्चा किया जा सके। श्री वी.पी. मेनन ने अपने कार्य '*इंटीग्रेशन ऑफ दी इण्डियन स्टेट्स*' में कहा है कि रियासतों ने संविधान सभा में भाग लेने के लिए, अपनी शक्तियों को त्यागने और भारतीय संघ को तीन विषयों, नामतः, रक्षा, विदेशी मामलों और संचार की आवश्यकता थी, जो अनौपचारिक बैठकों और रियासतों के शासकों और उनके सलाहकारों के साथ चर्चा के बाद सहमत हुए जिन्होंने सार्वजनिक भावनाओं और राजनीतिक शक्ति के हस्तांतरण के प्रभाव का एहसास किया था। तदनुसार, राज्यारोहण के विलेखों पर किये गये हस्ताक्षर के अन्तर्गत विदेशी मामले, रक्षा और संचार को जूनागढ़, हैदराबाद और कश्मीर के अपवाद के साथ रियासत के अधिकांश शासकों द्वारा अधिक्षेत्र को सौंप दिया गया था।

22. अगला चरण रियासतों का एकीकरण था, जो 1948–49 में, शासकों/राजाओं ने विलय समझौतों और प्रसंविदाओं पर हस्ताक्षर करने के साथ हुआ था। तदोपरान्त, रियासतों का विलय राज्यों या यूनियनों में प्रशासित क्षेत्रों में हो गया, जिससे व्यक्तिगत शासकों से लेकर आम जनता यानी स्वतंत्र भारत के नागरिकों तक निरपेक्ष सत्ता का हस्तांतरण सुनिश्चित हो गया। विलय समझौतों ने पूर्व रियासतों को भारत संघ में एकीकरण सुनिश्चित किया। पूर्ण शक्ति और संप्रभुता के अभ्यर्पण के बदले में, शासकों

को आस्तियों के उचित आवंटन, संपत्ति और निश्चित व्यक्तिगत आय को राज्य भत्ते (प्रिवी पर्स) के माध्यम से आश्वासन दिया गया था। विलय के करार ने पूर्व शासकों को विशेषाधिकारों और रियायतों को भी मंजूरी दी थी जिन्होंने एक शासक की स्थिति का उपभोग किया था। इस अवस्था में, राज्य और शासकों की व्यक्तिगत संपत्तियों का सीमांकन करना आवश्यक हो गया। पहला पूर्ववर्ती राजकुमारों की सम्पत्ति रह गई जबकि दूसरा राज्य की संपत्ति हो गई।

23. इस प्रक्रिया में भारत सरकार द्वारा जिन सिद्धांतों का पालन किया जाता है, उन्हें श्री वी.पी. मेनन द्वारा अपने कार्य में स्पष्टतः निम्नलिखित तरीके से कहा है:

> " इस सम्मेलन में विकसित व्यापक सिद्धांत इस प्रकार थे। अचल संपत्तियों को पूर्वोपयोगी आधार पर शासकों को उनकी वास्तविक और प्रशासन की जरूरतों के संबंध में आवंटित किया जाना था। कुछ शासकों द्वारा कृषिक्षेत्रों, उद्यानों और चरागाह क्षेत्रों को बनाए रखने की अनुमति दी गई थी, लेकिन इन के संबंध में शासक की स्थिति एक निजी भू–स्वामी के समान होगी और वह राजस्व विधियों और आकलन के अधीन होगा। निवेश और शेष राशि के संबंध में, केवल वे राज्य जिनमें से कोई दावा नहीं कर सकते थे, उन्हें शासक की निजी संपत्ति के रूप में मान्यता दी जानी थी। यद्यपि हमने सत्तारूढ़ परिवार के व्यक्तिगत आभूषणों के लिए कोई दावा नहीं किया था, लेकिन 'विरासत' (*हेयरलूम*) के रूप में इस तरह के पैतृक आभूषण को सत्तारूढ़ परिवार के लिए संरक्षित किया जाना था; और मूल्यवान राजचिन्ह को समारोह कार्य अवसर पर उपयोग के लिए शासक की अभिरक्षा में रहेगा... "

24. ये सिद्धांत भारत सरकार द्वारा भारतीय राज्यों पर श्वेत पत्र में स्पष्ट रूप से प्रतिबिंबित होते हैं, जिसका प्रासंगिक भाग इस प्रकार पढ़ा गया:

"157. पूर्व में शासकों ने निजी और राज्य की संपत्ति में कोई अंतर नहीं किया; वे व्यक्तिगत रूप से अपने संबंधित राज्यों के स्वामित्व वाली किसी भी संपत्ति के लिए स्वतंत्र रूप से उपयोग कर सकते थे। राज्यों के एकीकरण के साथ, शासक की निजी संपत्ति को स्पष्ट रूप से परिभाषित और सीमांकित करना आवश्यक हो गया।"

25. इसमें कोई संदेह नहीं है कि पूर्व के शासकों का विलय समझौतों के बाद संप्रभुता का स्थगन हो गया। हालांकि, वे रियायतों के संदर्भ में लाभ के हकदार थे जो विलय समझौतों के अन्तर्गत मंजूर किये गए थे, जिसके आधारतत्व अग्रलिखित थे:

" xx xx xx xx xx

अनुच्छेद III: इस समझौते (एतस्मिनपश्चात् "प्रसंविदा राज्यों" के रूप में संदर्भित) की अनुसूची में राज्य के प्रत्येक शासक को एतद्द्वारा भारत सरकार को सौंपते हैं, पूर्वोक्त दिवस के प्रभावस्वरूप, पूर्ण और विशिष्ट प्राधिकरण, न्यायक्षेत्र और शक्तियों के लिए, और उस राज्य के शासन के संबंध में; और तत्पश्चात भारत सरकार उक्त शक्तियों, प्राधिकार और क्षेत्राधिकार का इस प्रकार और ऐसी अभिकरण के माध्यम से प्रयोग करने के लिए सक्षम होगी, जैसा कि वह सोच सकती है।

अनुच्छेद IV: (1) प्रत्येक प्रसंविदा राज्य के शासक को भारत सरकार से अपने राज्य भत्ते को प्रतिवर्ष प्राप्त करने का हक होगा, जो इस समझौते की अनुसूची में उस प्रसंविदा राज्य के विरूद्ध निर्धारित करेगा।

(2) उक्त राशि का आशय शासक और उसके परिवार के सभी खर्चों को समावेश करना है, जिसमें व्यक्तिगत कर्मचारियों के खर्च, उनके निवास, विवाह और अन्य समारोहों के रखरखाव आदि शामिल हैं, और किसी भी कारण से जो भी हो न तो बढ़ाया जाएगा और न ही कम किया जाएगा।

(3) उक्त राशि सभी करों से मुक्त होगी और प्रत्येक तिमाही की शुरुआत में चार बराबर किश्तों में भुगतान किया जाएगा।

अनुच्छेद V: प्रत्येक प्रसंविदा राज्य के शासक, उसके परिवार के सदस्य की तरह भी सभी व्यक्तिगत विशेषाधिकारों, सम्मानों और उपाधियों के हकदार होंगे, चाहे वे अगस्त 1947 के 15 दिन पहले उस राज्यक्षेत्रों के भीतर या बाहर हों।

अनुच्छेद VI: विधि और प्रथा के अनुसार, प्रत्येक प्रसंविदा राज्य के गद्दी के लिए, शासक के व्यक्तिगत अधिकारों, विशेषाधिकारों, सम्मान और उपाधियों के लिए भारत सरकार उत्तराधिकार की गारंटी देता है।

अनुच्छेद VII: (1) प्रत्येक प्रसंविदा राज्य के शासक, प्रसंविदा के अनुसरण में उस राज्य के प्रशासन से लेकर राजप्रमुख बनने तक की तिथि पर उससे संबंधित सभी निजी संपत्तियों (राज्य संपत्तियों से अलग) में पूर्ण स्वामित्व, उपयोग और उपभोग का हकदार होगा।

(2) यदि कोई विवाद उत्पन्न होता है कि क्या संपत्ति का कोई भी हिस्सा शासक या राज्य की निजी संपत्ति है, तो इसे भारत सरकार द्वारा नामित न्यायिक अधिकारी के लिए निर्दिष्ट किया जाएगा, और अधिकारी का फैसला सभी संबंधित पक्षों पर बाध्यकारी होगा।

अनुच्छेद VIII: भारत सरकार के प्राधिकार के अन्तर्गत या उसके अधीन कोई जांच नहीं की जाएगी, और प्रसंविदा राज्य के शासक के विरूद्ध चाहे वह व्यक्तिगत क्षमता में हो अथवा नहीं, उस राज्य के अपने प्रशासन की अवधि के दौरान उसके अथवा उसके प्राधिकारी के द्वारा किसी चीज के पूर्णता अथवा अपूर्णता संबंध में किसी भी न्यायालय में कोई कार्यवाही नहीं होगी।

xx xx xx "

26. भारत का संविधान अनुच्छेद 363 में खंड 2 के माध्यम से अधिनियमित है, 'भारतीय राज्य' की अभिव्यक्ति को किसी भी राज्यक्षेत्र के रूप में परिभाषित किया गया था जिसे उसके महामहिम अथवा भारत संघ सरकार के द्वारा संविधान के प्रारंभ से पहले राज्य को मान्यता दी गई थी और भारतीय राज्य के शासक के रूप में उसके महामहिम अथवा भारत संघ सरकार के द्वारा ऐसे प्रारंभ के पहले 'शासक' के रूप में मान्यता दी गई थी।

'शासक' का अर्थ राजकुमार के रूप में परिभाषित था, प्रमुख अथवा किसी अन्य व्यक्ति जिसके द्वारा अनुच्छेद 291 के खंड(1) में उल्लिखित ऐसी किसी भी प्रसंविदा अथवा समझौते को शामिल किया गया था और जिसे सभापति द्वारा रियासत के शासक के रूप में मान्यता दी गई थी।

27. इसलिए, यह स्पष्ट है कि विलय समझौते पर हस्ताक्षर करने पर, शासकों ने अपनी संप्रभुता खो दी थी और एक तरीके से, संविधान में उल्लिखित कुछ विशेष अधिकारों और विशेषाधिकारों के साथ सामान्य नागरिक बन गए थे।

28. विलय के समझौतों का विधिक प्रभाव और क्या अविभाज्य संपत्ति के प्रथागत नियम *'cessante ratione legis, cessat ipsa lex'* का सिद्धांत लागू होने के द्वारा समाप्त होने के योग्य होगा जिसको कई फैसलों में जाँच किया गया है। प्रथागत नियम के विरूद्ध तर्क को जारी रखते हुए इस दलील पर स्थापित है कि यद्यपि संप्रभुता की विशेषता ज्येष्ठता और अविभाज्यता में नहीं था जो प्रथाओं में विद्यमान था क्योंकि राजशाही अस्तित्व में था, और इसलिए जब राजशाही की हानि हुई, तो प्रथा के अस्तित्व की कोई आवश्यकता नहीं थी। इस तर्क को ***रेवथिन्नल बालगोपाल वर्मा*** (उपरोक्त) के मामले की जांच की गई और न्यायमूर्ति एस. रंगनाथन द्वारा निम्नलिखित शब्दों में अस्वीकृत कर दिया गया:

> "5. अपीलार्थी की तरफ से बताए गए प्रमुख तर्क पर चर्चा करने से पूर्व, अपीलार्थी के दावे का पूर्ण उत्तर को तात्पर्यित करने के लिए प्रथम प्रत्यर्थी की तरफ से पेश किये गए आधार को स्पष्ट करना सुविधाजनक हो सकता है... इस मुद्दे को शासक और भारत सरकार के बीच

व्यवस्थापित कर दिया गया और उक्त संपत्तियों को भारत सरकार के समक्ष आत्मसमर्पण किए बिना शासक द्वारा बनाए रखने की अनुमति दी गयी। हालांकि, घोषित की गयी संपत्तियों में तीसरे पक्ष पर, यदि कोई है, तो इसके अधिकारों पर प्रभाव या प्रतिकूल प्रभाव नहीं डालता। इसने शासक के लिए किसी भी अन्य संपत्ति या उससे अधिक की उपाधि नहीं दी, *नियत दिन से ठीक पहले उसका क्या हुआ....*यह किसी भी तरह से किसी भी संपत्ति की प्रकृति को उसके हाथों अथवा दावों को, यदि कोई हो, प्रभावित नहीं करता था, जो दूसरों को शासक के विरूद्ध उन सम्पत्तियों को *स्थिति के अनुसार* प्राप्त कर सकता था। ये प्रस्थापनाएँ विश्वेश्वर राव बनाम एम.पी. राज्य (1952 एससीआर 1020), डालमिया दादरी सीमेंट कंपनी लिमिटेड बनाम सीआईटी (1959 एससीआर 729) और राजेंद्र सिंह बनाम भारत संघ (1970–2 एससीआर 631) के फैसलों में साथ ही भारत सरकार के ज्ञापन दिनांक 18.05.51 (प्रदर्श ए–4) के प्रस्तर 4 में निहित स्पष्टीकरण में स्पष्ट है।"

29. मा. न्यायमूर्ति, एन.डी. ओझा ने उसी निर्णय ***डी.एस. मेरमवाला*** (उपरोक्त) के मामले में गुजरात उच्च न्यायालय के निर्णय को अनुमोदित और संदर्भित किया किया, जिसको निम्नानुसार अवधारित किया गया है:

"57....अब मेरमवाला की ओर से यह विवादित नहीं किया गया था कि यदि संपत्ति का विलय करने से पूर्व पैतृक सहदायिक संपत्ति की प्रकृति को सम्मिलित नहीं किया गया था, विलय समझौते के अन्तर्गत भायावाला के साथ छोड़ी गई संपत्तियां पैतृक सहदायिक संपत्तियां नहीं होंगी: यदि विलय से पहले मेरमवाला को एस्टेट में कोई रुचि नहीं थी, तो विलय के समझौते के अन्तर्गत भायावाला के साथ शेष संपत्तियों में उनकी कोई दिलचस्पी नहीं होगी। यह मेरमवाला का मामला नहीं था और यह मामला नहीं हो सकता है चूँकि विलय समझौता राज्य का एक कार्य होगा जो विलय के समझौते के परिणामस्वरूप भायवाला द्वारा अवधारित की गयी संपत्तियों में उसके द्वारा किसी भी ब्याज का अर्जन किया गया था। इसलिए, भायावाला उसके द्वारा अवधारित की गई संपत्तियों के पूर्ण मालिक थे और उनकी वसीयत के अनुसार उन्हें निस्तारण के लिए सक्षम थे.....

.....हालांकि श्री आई.एम. नानावटी का तर्क यह था कि सर्वोपरि शक्ति द्वारा ज्येष्ठता का सिद्धांत (प्राइमोगेनिचर का नियम) की प्रयोज्यता का प्रभाव यह था कि सामान्य हिंदू विधि के अन्तर्गत सहदायिकी के

> अधिकारों पर ग्रहण लगा दिया गया था: इन अधिकारों को नष्ट नहीं किया गया था, लेकिन वे निष्क्रिय बने रहे और सर्वोपरि की गलती पर, ग्रहण की छाया को हटा दिया गया, अधिकार पूरी तरह से प्रभावी हो गए। यह तर्क पूर्णतः सिद्धांत पर अपरिहार्य है ... "

यह अनुपात न्यायमूर्ति, एस. रंगनाथन (देखें प्रस्तर 11) द्वारा स्वीकार किया गया था, जिसमें उन्होंने अवलोकन किया था कि यदि मुद्दा एक सामान्य अविभाज्य संपत्ति से निपटने के लिए होता तो मामला अलग होता, लेकिन एक संप्रभु राज्य के मामले में जिसका प्रमुख पहले एक संप्रभु शासक था, एक संप्रभु शासक द्वारा अर्जित संयुक्त परिवार की संपत्ति होने का दावा नहीं किया जा सकता है।

31. इसके बाद ***रेवथिन्नल बालगोपाल वर्मा*** (उपरोक्त) में, न्यायमूर्ति एन.डी. ओझा का अवलोकन अग्रसारित किया था:

> "63. इस संबंध में यह ध्यान में रखा जाना चाहिए कि एक संप्रभु शासक के उत्तराधिकार की रीति और ऐसे शासक की शक्तियां दो अलग अवधारणाएं हैं। उत्तराधिकार की रीति उस प्रक्रिया को विनियमित करती है जिसके द्वारा एक संप्रभु शासक दूसरे के द्वारा सफल होता है। यह सामान्य ज्येष्ठता अथवा पैतृक ज्येष्ठता का नियम अथवा किसी अन्य स्थापित किया गया उत्तराधिकार शासन का नियम, अन्य बातों के साथ–साथ शासित हो सकता है। यह प्रक्रिया एक संप्रभु दूसरे के सफल होने के साथ समाप्त होती है। तत्पश्चात संप्रभु द्वारा शक्तियों, विशेषाधिकारों और विशेषाधिकार का प्रयोग किया जाना एक प्रश्न है, जो उत्तराधिकार की प्रक्रिया से संबंधित नहीं है, बल्कि संप्रभुता की कानूनी घटनाओं से संबंधित है। यह प्रक्रिया एक संप्रभु का दूसरे के सफल होने साथ समाप्त होती है। तत्पश्चात संप्रभु द्वारा शक्तियों, विशेषाधिकारों और परमाधिकार का प्रयोग किया जाने का प्रश्न है, जो उत्तराधिकार की प्रक्रिया से संबंधित नहीं है, परन्तु संप्रभुता की विधिक घटनाओं से संबंधित है।

64. यदि कोई यह प्राख्यान करता है कि एक संप्रभु द्वारा अवधारित एक विशिष्ट संपत्ति संप्रभुता की विधिक घटनाओं पर लागू नहीं होता है, तो यह उसके द्वारा अभिवचन और स्थापित किया जाएगा कि उक्त संपत्ति को संप्रभु द्वारा संप्रभु के रूप में अवधारित की गई थी, लेकिन किसी अन्य क्षमता में।तत्काल मामले में यह प्राख्यान करते हुए कि संपत्ति के वाद से सम्बन्धित संयुक्त परिवार और प्रत्यर्थी 1 था, यहाँ तक कि एक संप्रभु शासक, उन्हें उस परिवार के प्रमुख के रूप में अवधारित करता था, जिसके पास संपत्ति थी, अपीलार्थी ने न तो विशेष रूप से दलील और न ही ऐसे प्राख्यान के समर्थन में कोई विश्वसनीय साक्ष्य की प्रस्तुति दी है। अपीलार्थी की ओर से यह बताया गया है कि प्रथा द्वारा केवल सबसे बड़े पुरुष, जो कि बड़ी महारानी के सबसे बड़ी सन्तान है, शासक हो सकते हैं और रानियों के सभी उत्तराधिकारी, जो संयुक्त हिंदू परिवार का गठन करते हैं, रानियों की सम्पत्तियों की हिस्सेदारी के हकदार होंगे और सम्पत्तियों के वाद में प्रत्यर्थी 1 तारवाड़ के प्रमुख के रूप में अवधारित किया था यहाँ तक कि यद्यपि उसके अधिकार में अविभाज्य थे। इस तर्क को विचारण न्यायालय के साथ–साथ उच्च न्यायालय ने भी रद्द कर दिया है और हमारे संज्ञान में ऐसी कोई आश्वस्तकारी बात नहीं आई है जिसके आधार पर अपीलार्थी की ओर से उल्लिखित उपधारणा की जा सके और अधीनस्थ न्यायालयों के निष्कर्षों को उलटा जा सके। हम एक अपील के साथ व्यवहार कर रहे हैं और जैसा कि इस न्यायालय ने ठाकुर सुखपाल सिंह बनाम ठाकुर कल्याण सिंह में बताया है, अपीलार्थी का यह कर्तव्य है कि वह यह दिखाए कि अपील के अन्तर्गत निर्णय त्रुटिपूर्ण है।"

31. इससे पहले भी, ***मिर्जा राजा पुष्पावती विजयराम गजपति राज मन्ने सुल्तान बहादुर इत्यादि बनाम श्री पुषावती विश्वेश्वर गजपतिराज राजकुमार ऑफ विजियानगरम और अन्य***[15] (AIR 1964 SC 118) में, इस न्यायालय ने अवलोकित किया था कि निम्नलिखित अवलोकनों के साथ उन चीजों की शर्तें जिसको उन्होंने बनाया है प्रथाएँ उससे ज्यादा दिनों तक जीवित रहती हैं:

"यह तर्क कि ज़मींदारी संपत्ति का उन्मूलन उन जवाहरातों की प्रथागत अविभाज्यता को स्वचालित रूप से समाप्त कर देना चाहिए जिन्हें परिवार

द्वारा राजचिन्ह के रूप में माना गया था, इस तथ्य को नजरअंदाज कर देता है कि कई बार प्रथा चीजों की अपनी स्थिति को अधिक समय तक जीवित रहती हैं जिसने इसे जन्म दिया। जैसा कि लॉर्ड एटकिन्सन द्वारा *राव किशोर सिंह बनाम एमएसटी गहेनाबाई*, AIR 1919 P.C.100, में बोर्ड की राय देने में अवलोकित किया गया था। "यह देखना मुश्किल है कि क्यों एक परिवार के अनुरूप अभिव्यक्त या विवक्षित से सहमत नहीं होना चाहिए उस स्थिति के पूर्णतः बदल जाने के पश्चात प्राचीन काल में मौजूद चीजों की शर्तों द्वारा आवश्यक की गई प्रथा का अवलोकन करना जारी रखना चाहिए। इसलिए, अभिव्यक्ति *'cessat ratio cessat lex'* में सन्निहित सिद्धांत लागू नहीं होता है, जहां प्रथा उन चीजों की शर्तों को अधिक समय तक जीवित रखता है, जिन्होंने इसे जन्म दिया था। इसीलिए हम सोचते हैं कि इस तर्क को इस आधार पर उठाया गया कि आखिरकार आरम्भिक समय में राजचिन्ह का कोई औचित्य नहीं था और यदि प्रारम्भ में कोई औचित्य था, तो यह जमींदारी सम्पत्ति के उन्मूलन के पश्चात समाप्त हो गया, इसे बरकरार नहीं रखा जा सकता।

पारिवारिक प्रथा के प्रमाण के मामले में, यह उस विधि की तकनीकि नहीं है जो प्रबल होगा परन्तु आचरण के साक्ष्य जो सुस्पष्टतः साबित करते हैं कि पार्टियां पुरानी प्रथा को जारी रखना चाहती थीं।"

32. इस बात पर कोई संदेह या बहस कि क्या अविभाज्यता की प्रथा एवं ज्येष्ठता का सिद्धांत (प्राइमोगेनिचर का नियम) ने प्रसंविदाओं और विलय को इस न्यायालय द्वारा ***प्रताप सिंह*** (उपरोक्त) में जारी रखी थीं, जिसमें राज्य सभा में विधेयक पेश किया गया था तब उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 5(ii) और बहस के लिए विशेष संदर्भ दिया गया था। इस निर्णय का प्रासंगिक भाग निम्नानुसार है:

"71. हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 (1956 का केंद्रीय अधिनियम 30) की धारा 5 इस प्रकार है:

"यह अधिनियम लागू नहीं होगा–

(i) * * * *

(ii) कोई भी संपत्ति जो भारत सरकार के साथ किसी भी भारतीय राज्य के शासक द्वारा अथवा इस अधिनियम के प्रारंभ होने से पहले पारित किसी अधिनियमन की शर्तों द्वारा प्रविष्ट की गई किसी भी प्रसंविदा अथवा समझौते की शर्तों के अनुसार एकल उत्तराधिकारी के पास आती है;

(iii) * * * *"

72. *मुल्ला* के हिंदू विधि में, 16 वां संस्करण पृष्ठ सं. 766 पर यह कहा गया है:

"भारतीय राज्यों के उत्तराधिकार के अविभाज्य सम्पत्तियों तक अपवाद सीमित है, जिसे विशेष प्रसंविदाओं अथवा समझौतों एवं सम्पत्तियों द्वारा विनियमित किया जाता है, उत्तराधिकार को किसी भी पूर्व विधान, और उप धारा(iii) में उल्लिखित सम्पत्ति एवं राजमहल कोष द्वारा विनियमित किया जाता है।"

73. 1954 में बिल की स्थिति में, यह स्पष्ट रूप से *राज्य सभा वाद–विवाद* में 7115 और 7116 पृष्ठों पर इस रूप के अन्तर्गत लाया गया था:

"तब एक और खंड, उप–खंड(ii) है जो कहता है:

'कोई भी संपत्ति जो भारत सरकार के साथ किसी भी भारतीय राज्य के शासक द्वारा अथवा इस अधिनियम के प्रारंभ होने से पहले पारित किसी अधिनियमन की शर्तों द्वारा प्रविष्ट की गई किसी भी प्रसंविदा अथवा समझौते की शर्तों के अनुसार एकल उत्तराधिकारी के पास आती है;'

यह खंड इसलिए रखा गया है, क्योंकि जैसा कि हम जानते हैं, यह कि केवल स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात बड़े पैमाने पर राज्यों का एकीकरण हुआ है, और कुछ समझौते और प्रसंविदाएं हैं जो सरकार और उन राज्यों के शासकों के मध्य प्रविष्ट की गई हैं, और कुछ व्यवस्थाएँ केवल हाल ही में उनकी उत्तराधिकार के क्रम के संबंध में की गई है। यह एक विशेष बात है। यह क्या कहता है: 'किसी भी प्रसंविदा या समझौते को शासक द्वारा प्रविष्ट किया गया'। स्वाभाविक रूप से, यदि हमने हाल ही में 1947 या 1948 जैसे किसी भी समझौते में प्रविष्ट किया है और बहुत समय नहीं बीता है, तो यह समुचित नहीं है कि इस तरह की एक सामान्य प्रकृति के अधिनियमन के द्वारा हमें कुछ ऐसा करना चाहिए जो समझौतों को शून्य कर देगा और प्रसंविदाएं जो भारत सरकार ने पूर्णतः उन लोगों के साथ सत्यनिष्ठापूर्वक दर्ज की हैं और जिनके बल पर उन्होंने अपने राज्यों को

भारत के साथ एकीकृत करने की अनुमति देने के लिए सहमति प्रदान की थी। बेशक, मैं इस बात से सहमत हूं कि शायद यह पूरी तरह से एक समाजवादी स्वरूप नहीं है अथवा जिसे आपने माँग की है, परन्तु जैसा कि मैं हमेशा कह रहा हूं, मैं यह अवधारित करता हूं कि हमें विकास की प्रक्रिया से आगे बढ़ना होगा। मैं अस्पष्ट कथन नहीं करता।"

74. इसलिए, यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि यह नियम 1947–48 के बाद भी जारी रहा।"

33. हिंदू उत्तराधिकार विधेयक 22 दिसंबर 1954 को राज्यसभा में प्रस्तावित किया गया और इसके तहत खंड(iv) को निम्न रूप से पढ़ा गया है:

"(iv) कोई भी संपत्ति जो उत्तराधिकार के प्रथागत नियम अथवा किसी अनुदान या अधिनियमन की शर्तों के द्वारा एकल उत्तराधिकारी के लिए आती है"

हालाँकि, विधेयक को संसद की एक संयुक्त समिति को निर्दिष्ट किया गया था, जो इस रिपोर्ट [16] (Gazette of India Extraordinary dated 28.9.1955 Part II Sec.2, page 365, '8) में निम्न रूप में अवलोकित किया गया था:

"संयुक्त समिति की आगे यह राय है कि उपखंड(iv) में अपवाद भारतीय राज्यों के उत्तराधिकारियों के अविभाज्य सम्पत्तियों तक ही सीमित होना चाहिए, जो विशेष प्रसंविदाओं या समझौतों द्वारा विनियमित है और... "

धारा 5(ii), अपने वर्तमान रूप में, संयुक्त समिति द्वारा ऊपर उद्धृत अपनी राय के अनुसरण में अनुशंसित की गई थी, जिसका अर्थ है कि शासकों के पास अविभाज्य सम्पत्ति थी और इन के उत्तराधिकार को विशेष प्रसंविदाओं अथवा समझौतों द्वारा विनियमित किया गया था। इस प्रकार, चर्चा के बाद, विधेयक में (iv) अपवाद को हटा दिया गया और विधि के रूप में अधिनियमित नहीं किया गया। इसका प्रभाव यह हुआ कि जमींदारों या उन

जागीरों को रखने वालों के मामले में ज्येष्ठता और अविभाज्य सम्पत्ति की प्रथा दिनांक 17 जून 1956 से उत्तराधिकार अधिनियम का पूर्व प्रवर्तन लागू नहीं होगा। यह एक ऐसा पहलू है जिसे अक्सर ही उपेक्षित किया जाता है और ***एन. पद्मम्मा एवं अन्य बनाम एस. रामकृष्ण रेड्डी एवं अन्य***[17] ((2008) 15 SCC 517) में इस न्यायालय द्वारा किए गए व्याख्या के अनुपात की जांच करते हुए इस पर विचार नहीं किया जाता है जिसमें यह अवलोकित किया गया है कि ज्येष्ठता की विधि भारत में अब लागू नहीं है और इस तरह के प्रावधान को संविधान के अनुच्छेद 14 के द्वारा असंवैधानिक होने के लिए अवधारित किया जा सकता है। ***एन. पद्मम्मा***(उपरोक्त) दक्षिण अफ्रीका के सर्वोच्च न्यायालय के एक निर्णय को निर्दिष्ट करता है। इस निर्णय द्वारा यह कहा जाना सुसंगत हो सकता है कि, इस मामले और मुद्दे को एक वृहद पीठ को निर्दिष्ट किया गया था, जिसके संदर्भ को ***एन. पद्मम्मा एवं अन्य बनाम एस. रामकृष्ण रेड्डी एवं अन्य***[18] ((2015) 1 SCC 417) में मा. न्यायमूर्ति टी.एस. ठाकुर द्वारा लिखित, तीन न्यायाधीशों की पीठ द्वारा निर्णय दिनांकित 23 सितंबर 2014 को निर्णीत किया गया था। ***एन. पद्मम्मा***(उपरोक्त) में यह निर्णय विनिर्दिष्टतः ज्येष्ठता की विधि का उल्लेख नहीं करता है क्योंकि यह मुद्दा नहीं उठाया गया था। न तो वृहद पीठ द्वारा विचार की गई संपत्ति की अविभाज्यता की प्रथा थी।

34. ***टिक्का शत्रुजित सिंह एवं अन्य*** बनाम ***ब्रिग सुखजीत सिंह एवं अन्य***[19] (ILR 2011 (1) Del 704) में दिल्ली उच्च न्यायालय ने स्पष्ट रूप से, एक सारणीबद्ध रूप में, रियासतों और जमींदारों/जागीरों के शासकों के लिए लागू ज्येष्ठता का सिद्धांत (प्राइमोगेनिचर का नियम) और अविभाज्य संपत्ति के बीच अंतर

रियासतों और ज़मींदारों/जागीरदारों के शासकों के लिए निम्न स्थितियों में प्रयोज्य है:

क्र.सं.	**भारतीय राज्य के शासक**	**एक जमींदारी के धारक**
1.	शासक (संप्रभु) राज्य और उसकी संपत्तियों का पूर्ण स्वामी होगा। उनकी संपत्ति में किसी और का कोई हित या हिस्सा नहीं होगा।	एक जमींदारी का धारक, जो कि एक भारतीय राज्य के शासक से अलग है, एक अविभाज्य संपत्ति के रूप में इसे अवधारित कर सकता है। यदि यह पैतृक है, तो वह इसे परिवार की ओर से धारण करता है और यद्यपि विभाजन का कोई अधिकार नहीं होगा, लेकिन उसकी रुचि किसी पूर्ण स्वामी से नहीं होगी, जिसका एक संप्रभु शासक था। यह पारिवारिक संपत्ति होती और उस संबंध में निर्णयों की श्रृंखला द्वारा समझे जाने वाले प्रकार की होती।
2.	उत्तराधिकार के लिए एक नियम के रूप में लागू करने के लिए ज्येष्ठता को परिकल्पित किया जायेगा।	ज्येष्ठता, नहीं दोहराएगा, लागू करने के लिए परिकल्पित नहीं किया जाएगा, लेकिन एक प्रथा के रूप में साबित करना होगा।
3	वह प्रथमतः अपने राज्य को (15.8.1947) तीन विषयों, बाह्य मामलों, संचार और रक्षा पर भारत संघ के लिए एक प्रसंविदा/समझौते पर हस्ताक्षरित करने वाला होता। और तत्पश्चात– 26.01.1950 से पूर्व अपने संघ राज्य अथवा अन्य सरकार के प्रशासन को रोकने वाले प्रसंविदा अथवा विलय समझौते द्वारा।	वह प्रथम स्तम्भ में 3 से 5 मदों के लिए कोई भी एक पक्ष नहीं होगा। यह एक तरफ पूर्व शासक और दूसरी तरफ जमींदारी के बीच स्थिति का अंतर स्थापित करता है। यह बदले में, प्रयोज्य विधि के लिए सभी अंतर बनाता है।
4	26 जनवरी, 1950 के बाद, संविधान के अनुच्छेद 366 के तहत उन्हें भारत के राष्ट्रपति द्वारा एक पूर्व भारतीय राज्य के शासक के रूप में मान्यता दी जाएगी।	––––––––

5	राज्यों के मंत्रालय द्वारा नियत राशि के लिए उन्हें वार्षिक राज्य भत्ता मिलेगा।	--------
6	उनकी मृत्यु पर, उत्तराधिकार (संपत्ति) धारा 5(ii) के तहत अपवाद के पहले भाग द्वारा आवृत किया जाएगा और इसलिए 1956 अधिनियम से प्रभावित नहीं होगा। यदि वह 17.6.1956 के बाद मर जाता है, तो इससे उत्तराधिकार पर कोई फर्क नहीं पड़ेगा जो अभी भी ज्येष्ठता द्वारा होगा।	यदि वह 17.6.1956 के बाद मर जाता है, तो उसकी संपत्ति का उत्तराधिकार ज्येष्ठता द्वारा नहीं होगा। यह हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 8 के अनुसार होगा।
7	वह 26 वें संशोधन द्वारा एक शासक के रूप में अमान्य होगा।	चूंकि उन्हें कभी भी शासक के रूप में मान्यता नहीं मिली थी, इसलिए 'अमान्य' का कोई प्रश्न ही नहीं है।

35. उत्तराधिकार अधिनियम की उद्देश्यिका में कहा गया है कि यह हिंदुओं के बीच निर्वसीयत के उत्तराधिकार से संबंधित विधि में संशोधन करने और संहिताबद्ध करने के लिए एक अधिनियम है और जैसा कि उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 14 का अपवाद के साथ मूलतः हिंदुओं द्वारा अवधारित सभी संपत्तियों की प्रकृति को विधि संबंधित संशोधन और संहिताबद्ध मानने के लिए अधिनियमित नहीं किया गया है। उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 4 में यह प्रावधान है कि पाठ, नियम, व्याख्या, प्रथा अथवा हिंदू विधि का उपयोग किसी भी मामले के संबंध में प्रभावी होगा, जिसके लिए अधिनियम में प्रावधान किया गया है और आगे किसी अन्य विधि को लागू किया गया है, जो अधिनियम के प्रावधानों के साथ असंगत है, लागू करने के लिए समाप्त हो जाएगा। उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 6 एक हिंदू पुरुष के हित के न्यागमन से संबंधित है (और हिंदू उत्तराधिकार (संशोधन) अधिनियम 2005 के संशोधन के बाद एक सहदायिक की पुत्री) एक संयुक्त हिंदू परिवार

से अलग मिताक्षरा सहदायिकी में रुचि रखती है। उत्तराधिकार की धारा 8 और 9 क्रमशः पुरुषों और महिलाओं के मामले में उत्तराधिकार के सामान्य नियमों से संबंधित है, यह एक जीवित व्यक्ति पर लागू नहीं होते बल्कि मृत्यु पर उत्तराधिकार का प्रश्न आने पर लागू होते हैं। इसी प्रकार, उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 30 जो वसीयती उत्तराधिकार से संबंधित है और भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 के प्रावधानों के अनुसार किसी भी संपत्ति को वसीयत द्वारा निपटान करने के लिए एक हिंदू को सशक्त करता है, *स्वयंमेव* जीवित व्यक्ति पर लागू नहीं होता है और धारक की मृत्यु की घटना में लागू होता है। धारा 5 (ii) धारा 4 का एक अपवाद है और भारत सरकार के साथ किसी भी भारतीय राज्य के शासक द्वारा दर्ज की गई किसी भी प्रसंविदा अथवा समझौते की शर्तों को लागू करते हुए रक्षित करता है अथवा उत्तराधिकार अधिनियम के प्रारंभ होने से पहले पारित किसी अधिनियमन की शर्तों के अनुसार संपत्ति एकल उत्तराधिकारी को प्राप्त होगा। उत्तराधिकार अधिनियम के प्रावधानों की धारा 14 के संभावित अपवाद एवं कुछ संशोधनों के साथ हिंदू उत्तराधिकार (संशोधन) अधिनियम 2005 के द्वारा तब तक लागू नहीं होगा जब तक कि उत्तराधिकार प्रारम्भ नहीं होता, इसलिए, जीवित व्यक्ति के कोई भी विधिक अधिकार प्रभावित नहीं होंगे। यह स्पष्ट रूप से न्यायमूर्ति एस. रंगनाथन द्वारा ***रेवथिन्नल बालगोपाल वर्मा*** (उपरोक्त) में कहा गया है, जिसमें उत्तराधिकार अधिनियम के प्रभाव के संदर्भ में अवधारित किया गया था:

> "19.....अधिनियम की धारा 4 के सुंदरी बनाम लक्ष्मी (उपरोक्त) के शब्दों में, "अधिनियम के प्रावधानों को अभिभावी करते हुए आवेदन देता है और यह प्रतिपादित करता है कि अधिनियम के मौजूदा सभी कानूनों से संबंधित किसी भी मामले के संबंध में, चाहे वह अधिनियमन के रूप में हो या अन्यथा जो अधिनियम के साथ असंगत हैं, निरसित किए जाते हैं। इस अधिनियम के प्रारम्भ होने से तुरंत

पहले जहाँ तक कोई भी अन्य कानून हिंदुओं पर लागू होता है क्योंकि यह अधिनियम में निहित प्रावधानों के साथ असंगत है।" अन्य शब्दों में, जबकि अधिनियम का कुछ मामलों पर तत्काल प्रभाव हो सकता है, जैसे, उदाहरणतः, कि अधिनियम के s.14 द्वारा आवरित, उत्तराधिकार के मामलों में इसका प्रभाव अलग है। यह अधिनियम केवल वही प्रदान करता है, जो अधिनियम के प्रारंभ होने के बाद मरते हुए किसी भी व्यक्ति के मामले में, उसके उत्तराधिकार को न केवल प्रथागत विधि द्वारा बल्कि केवल अधिनियम के प्रावधानों द्वारा शासित किया जाएगा।वास्तव में, यह स्पष्ट है कि यदि हम s.7(3) की शर्तों का उल्लेख करते हैं जो केवल तभी आकर्षित होते हैं जब एक *स्थानामदार* अधिनियम के प्रारंभ होने के पश्चात मर जाता है। इसलिए, यह बताने का कोई कारण नहीं है कि 17 जून, 1956 को उद्भूत अपीलकर्ता की हकदारी के लिए संपत्तियों के बंटवारे के लिए वाद दायर किया गया था।"

36. धारा 5(ii) के विधिक प्रभाव की ***भैया रामानुज प्रताप देव*** (उपरोक्त) में इस न्यायालय की तीन न्यायाधीश की पीठ द्वारा पहले जांच की गई थी, जिसमें धारा 5(ii) का उल्लेख करने के बाद यह अवलोकित किया गया था:

"15. .....यह धारा संपत्ति की रक्षा करती है, जो किसी भी प्रसंविदा अथवा समझौते द्वारा एकल उत्तराधिकारी की शर्तों के अनुसार प्राप्त होता है अथवा किसी भी अधिनियमन की शर्तों द्वारा यद्यपि हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम के रूप में ऐसी सम्पत्ति पर लागू नहीं है। यह धारा ऊपर उल्लिखित अधिनियम की धारा 4 के अपवाद के रूप में है।"

37. ***प्रताप सिंह*** (उपरोक्त) के वाद में उपरोक्त लेखों /प्रसंविदाओं का उल्लेख करने के पश्चात, यह अवलोकन किया गया:

"78. अनुच्छेद XII का सतर्क वाचन यह दर्शित करता है कि निजी सम्पत्तियों और राज्य की सम्पत्तियों के बीच स्पष्ट अंतर है। ऐसी निजी सम्पत्तियाँ शासक से संबंधित होनी चाहिए और पहले भी उनके उपयोग और उपभोग में होने चाहिए। इसलिए, ऐसी संपत्तियाँ जिन्हें पहले भी निजी संपत्तियों की मान्यता दी गई थी, उन्हें एकाकी छोड़

दिया गया था और इस प्रकार की मान्यता के लिए प्रस्तुत किया गया। जैसा कि श्वेत पत्र (प्रस्तर 157, पृष्ठ 23 उपरोक्त) में कहा गया है, सीमांकन और समझौते का एकीकरण के प्रयोजन के लिए सूची को बनाया गया था। यदि यह विधि की सही स्थिति है, तो विद्वत एकल न्यायाधीश की विपरीत अवलोकन सही नहीं हैं।"

38. पांच न्यायाधीशों की एक संविधान पीठ ने ***कुंवर श्री वीर राजेंद्र सिंह बनाम भारत के संघ एवं अन्य***[20] ((1969) 3 SCC 150) के वाद में संविधान के अनुच्छेद 366 के खंड (22) को संदर्भित किया था और यह अवलोकन किया कि यह मात्र परिभाषा खंड नहीं था, बल्कि एक ऐसा खंड जो राष्ट्रपति को "उसी समय के लिए" शासक को मान्यता देने के लिए सशक्त बनाता है, जो इंगित करता है कि राष्ट्रपति के पास न केवल मान्य करने की शक्ति है, बल्कि जब भी अवसर उद्भूत होता है, उस समय मान्यता को वापस लेने की शक्ति होती है। यह मान्यता संविधान के अनुच्छेद 291 के तहत राज्य भत्ते के अधिकार के प्रयोजन से थी, जो भारत के समेकित कोष से भुगतान किया गया था। हालांकि, यह अवधारित किया गया कि राज्य भत्ता एक निजी संपत्ति नहीं थी, जिस पर शासक को उत्तराधिकार में मिली हो। यह भी स्पष्ट किया गया था कि एक शासक की निजी संपत्ति का अधिकार संविधान के अनुच्छेद 366 के खंड (22) के भीतर समाविष्ट नहीं है। तदनुसार, शासक की निजी संपत्ति के किसी भी अधिकार को राष्ट्रपति द्वारा राजशाही को मान्यता नहीं है क्योंकि राजशाही की मान्यता राष्ट्रपति की राजनीतिक शक्ति का एक अभ्यास है। इस प्रकार, राजशाही की मान्यता संपत्ति का संकेत नहीं है, इसके बजाय शासक को राज्य भत्ते का उपभोग और निजी अधिकारों, विशेषाधिकारों और मर्यादाओं का हक प्रदत्त होता है। समान रूप से, राजशाही की मान्यता संपत्ति के अधिकार और किसी भी संपत्ति पर शासक के दावे को मान्य नहीं करती थी, जिसे उसे विधि के न्यायालय में स्थापित

करना है। यहाँ तक कि इस न्यायालय का अवलोकन वर्तमान संदर्भ में और भी महत्वपूर्ण हैं जो संयुक्त राज्य राजस्थान के लिए प्रसंविदा का अनुच्छेद XIV के संदर्भ में हैं, जिसे भूतपूर्व "संप्रभु" शासक ने प्रविष्ट किया था और इस तरह वैयक्तिक विधि के अनुसार निजी संपत्ति के सम्बन्ध में प्रत्याभूत उत्तराधिकार के साथ उत्तराधिकार का दावा करने का अधिकार दिया गया था। इस न्यायालय ने अवधारित किया कि संविधान के प्रभाव में आने के साथ, राजशाही या राज्य अलग–अलग संस्थाओं के रूप में अस्तित्व में नहीं रह गए थे। यहां तक कि प्रसंविदाएँ संविधान के अधिनियमन होने के पश्चात संविधान के साथ असंगत होने के बाद भी मौजूद नहीं रहेंगी। हालाँकि, प्रसंविदा के अनुच्छेद XIV के दृष्टिगत,उत्तराधिकार की वैयक्तिक विधि सुरक्षित और संरक्षित था। न्यायालय ने तदनुसार उत्तराधिकार के दावे सम्बन्धित विधिक स्थिति को अवलोकित करते हुए यह अवधारित किया किया:

> "8. ....प्रसंविदा के अनुच्छेद XIV का अर्थ यह है कि प्रथा एवं विधि के आधार पर उत्तराधिकार का दावा संरक्षित है। स्वयं द्वारा प्रसंविदा का अनुच्छेद XIV किसी भी प्रथा या कानून का प्रमाण नहीं है। यदि याचिकाकर्ता अनुच्छेद XIV पर अवलम्बित है, तो याचिकाकर्ता को उपयुक्त प्राधिकारी के समक्ष प्रथा अथवा विधि के आधार पर ऐसा अधिकार स्थापित करना होगा।"

संविधान पीठ का अनुपात ***वीर राजेंद्र सिंह*** (उपरोक्त) के वाद में इसके लिए एक बाध्यकारी मिसाल है, क्योंकि यह शासकों के उत्तराधिकार के वैयक्तिक विधि को मान्यता देता है और इसलिए, रियासतों के भूतपूर्व शासकों से संबंधित अविभाज्य सम्पत्तियों के लिए ज्येष्ठता का नियम/प्रथा लागू है। इस प्रथा/नियम को संप्रभुता के क्षति के साथ निराकरण नहीं किया गया था कि विलय समझौते पर हस्ताक्षर करने के साथ शासकों को छोड़ दिया गया था।

39. ठाकोर श्री विनयसिंहजी(उपरोक्त), प्रताप सिंह(उपरोक्त), रेवथिन्नल बालगोपाल वर्मा(उपरोक्त), माधव राव जीवाजी राव सिंधिया(उपरोक्त) के वाद में, इस न्यायालय ने वैयक्तिक विधि के प्रभाव और संरक्षण देने के द्वारा ऐसे शासकों पर ज्येष्ठता का सिद्धांत (प्राइमोगेनिचर का नियम) लागू किया है। अर्थात्, ज्येष्ठता का सिद्धांत(प्राइमोगेनिचर का नियम) प्रसंविदा और विलय समझौते के माध्यम से प्रदान किया गया। नतीजतन, भूतपूर्व शासकों ने भी अपने संप्रभु अधिकारों को अभ्यर्पण कर दिया था और उनके साम्राज्य/संपत्ति को भारतीय गणराज्य के साथ विलय कर दिया था, उत्तराधिकार और अपने सभी सहवर्ती अधिकारों को उनकी भूतपूर्व संप्रभु संपत्ति को अब निजी संपत्ति के रूप में धारित किया गया था , भूतपूर्व शासकों के लिए लागू प्रथाओं के रूप में विलय समझौते और संविधान को न्यागत करेगा। उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 5 के लिए संविधान और उप–धारा(ii) पर अवलम्ब लेते हुए, इस न्यायालय ने फिर से यह अवधारित किया कि भूमि की विधि पूर्व में ज्येष्ठता का सिद्धांत(प्राइमोगेनिचर का नियम) है। ***तलत फातिमा हसन के माध्यम से उसके संवैधानिक अटॉर्नी श्री सैयद मेहदी हुसैन बनाम नवाब सैयद मुर्तजा अली खान(डी) द्वारा विधिक प्रतिनिधि एवं अन्य*** के वाद में इस न्यायालय के हालिया फैसले में रामपुर राज्य के लिए लागू मुस्लिम पर्सनल लॉ (शरीयत) आवेदन अधिनियम, 1937 से संबद्ध दिनांक 31 जुलाई, 2019 को निर्णीत सिविल अपील सं. 1773/2002 है। यह ***तलत फातिमा हसन*** (उपरोक्त) के प्रस्तर 12 के निर्णय से स्पष्ट है, जो अभिलिखित करता है कि मुद्दा सिर्फ निर्णीत होना था कि क्या नवाब द्वारा अवधारित संपत्तियां ज्येष्ठता का सिद्धांत (प्राइमोगेनिचर का नियम) को लागू करते हुए उनके सबसे बड़े पुत्र

पर न्यागत होंगी अथवा मुस्लिम पर्सनल लॉ (शरीयत) आवेदन अधिनियम, 1937 द्वारा शासित होंगी और उसके सभी विधिक उत्तराधिकार पर न्यागत होंगे।

40. यहाँ यह बताना उचित होगा कि बृज नाथ सिंह की मृत्यु पर उत्तराधिकार 13 अक्टूबर 1968 को खोला गया था, जो कि भारतीय शासकों के अधिकारों और विशेषाधिकारों से संबंधित अनुच्छेद 362 से पूर्व है जिसे संविधान अधिनियम, 1971 (26 वें संशोधन) द्वारा निरसित कर दिया गया था। अनुच्छेद 362, जिसको निरसित करने से पूर्व कहा गया था कि विधि निर्माण के लिए संसद अथवा राज्य के विधानमंडल की शक्ति का प्रयोग या संघ या राज्य की कार्यकारी शक्ति के प्रयोग में, उचित सम्मान की गारंटी होगी अथवा ऐसे किसी प्रसंविदा या समझौते के तहत दिया गया आश्वासन, जो अनुच्छेद 291 में एक भारतीय राज्य के शासक के व्यक्तिगत अधिकारों, विशेषाधिकारों या सम्मानों के संबंध में दिया गया है।

41. उपरोक्त स्थिति को देखते हुए, अपीलार्थियों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह तर्क प्रस्तुत किया गया कि इलाहाबाद में स्थित एक पट्टाधृत नाज़ुल भूखंड और उत्तर प्रदेश राज्य के श्रेष्ठ पट्टेदार के स्वामित्व वाली संपत्ति है, इसे रघुबीर सिंह और बृज नाथ सिंह के हाथों में भी संप्रभु संपत्ति के रूप में नहीं माना जा सकता है। संपत्ति को संयुक्त हिंदू परिवार से संबंधित सहदायिकी संपत्ति के रूप में माना जाना चाहिए और उन अविभाज्य संपत्तियों के रूप में नहीं जिन पर ज्येष्ठता का सिद्धांत (प्राइमोगेनिचर का नियम) लागू होगा। इस विवाद को अस्वीकृत किया जाना चाहिए। बृज नाथ

सिंह ने स्वतंत्रता–पूर्व युग में मैहर राज्य के शासक के रूप में पदभार संभाला था, यद्यपि जब शासक ब्रिटिश वर्चस्व के अधीन थे तब अपने स्वयं के राज्यक्षेत्र के भीतर पूर्ण संप्रभु शासकों के रूप में माना जाता था। शासकों की सार्वजनिक और निजी संपत्ति के बीच कोई अंतर नहीं था चूँकि यह अन्तर संप्रभुता के बुनियादी गुण के लिए प्रतिकूल होगा। ***प्रताप सिंह*** (उपरोक्त) के मामले में, विषय वस्तु ब्रिटिश राज्यक्षेत्र में नाभा संपत्ति के शासक प्रमुख के द्वारा अवधारित अर्थात गृह राज्य के बाहर के राज्यक्षेत्र में संपत्तियाँ शामिल थीं। शिमला में स्टर्लिंग कैस्टल के रूप में जानी जाने वाली ऐसी ही एक संपत्ति को ब्रिटिशों द्वारा अधिग्रहण पर प्रतिबंध के दृष्टिगत ब्रिटिश राज्यक्षेत्र में संप्रभु अथवा जागीरदारों की भूमियों द्वारा चाहे वह प्रत्यक्ष हों अथवा अप्रत्यक्ष, सत्ताधारी प्रमुख के मित्र के नाम पर क्रय किया गया था। सत्तारूढ़ प्रमुख ने दिल्ली में एक संपत्ति अधिग्रहण भी कर ली थी। इस न्यायालय ने यह तर्क खारिज कर दिया था कि ये दोनों संपत्तियां निजी थीं, न कि राज्य की।

42. ***द्रौपदी देवी एवं अन्य*** बनाम ***भारत संघ एवं अन्य***[21] ((2004) 11 SCC 425) के मामले में, विवाद दिल्ली में एक संपत्ति के स्थायी पट्टे के अधिकार से संबंधित है जिसे कपूरथला हाउस कहा जाता है, जिसे 19 जनवरी 1935 को एक पंजीकृत बिक्री विलेख द्वारा कपूरथला के तत्कालीन महाराजा जगतजीत सिंह द्वारा क्रय किया गया था। यह प्रश्न कि क्या यह व्यक्तिगत अथवा राज्य/संप्रभु संपत्ति थी को भारत संघ के पक्ष में फैसला किया गया था कि यह एक राज्य अथवा संप्रभु संपत्ति थी, 1940 में महाराजा की कथित आदेश के बावजूद कपूरथला हाउस को उनकी व्यक्तिगत और निजी संपत्ति घोषित किया गया था। लेफ्टिनेंट कर्नल फिशर द्वारा कपूरथला हाउस

को राज्य संपत्ति के रूप में घोषित करने के संदर्भ में सहयोगी–पत्र दिनांकित 1 मार्च 1937 को उल्लेख किया गया था। इसलिए, अपीलकर्ताओं का यह तर्क कि रियासत के बाहर स्थित नजूल भूमि को पट्टे पर दिया गया है, निजी संपत्ति को किसी अन्य साक्ष्य या सामग्री के अभाव में खारिज कर दिया जाना चाहिए ताकि यह अनुमान लगाया जा सके कि संपत्ति संप्रभु शासक से संबंधित अविभाज्य संपत्ति का एक हिस्सा थी। दूसरी ओर, संपत्ति का उत्तराधिकार, नए शासक रघुबीर सिंह की मृत्यु के बाद बृज नाथ सिंह सहित अन्य पुत्र(गण) के बहिष्कार के लिए ज्येष्ठता का सिद्धांत (प्राइमोगेनिचर का नियम) को लागू करना दर्शाता है कि यह एक राज्य या संप्रभु के रूप में माना जाता है।

43. उपरोक्त चर्चा के दृष्टिगत, यह अवधारित किया जाना चाहिए कि संपत्ति, अविभाज्य संपत्ति का एक हिस्सा थी अर्थात, संपत्ति यद्यपि पैतृक सहदायिक संपत्ति का हिस्सा नहीं थी, बल्कि संप्रभु शासक बृजनाथ सिंह की संपत्ति का एक हिस्सा था। इसके अतिरिक्त, बृज नाथ सिंह संपत्ति को जीवित व्यक्तियो के बीच में स्थानांतरित कर सकते थे अथवा वसीयतनामा के जरिये वसीयत कर सकते थे। यह तर्क कि संपत्ति एक अलग या व्यक्तिगत संपत्ति थी और इसलिए, किसी भी प्रकार की अविभाज्य संपत्ति प्रतिष्ठित नहीं की गई है और अपीलार्थियों द्वारा प्रमुख तथ्य एवं सामग्री द्वारा दूर करने की उपधारणा को साबित नहीं किया गया है।

44. उपरोक्त कारणों से, हमें वर्तमान अपीलों में कोई गुण नहीं मिलता है और उच्च न्यायालय के अंतिम निष्कर्षों की पुष्टि करते हुए इसे खारिज किया जाता है। लागत के रूप में कोई आदेश नहीं होगा।

न्यायमूर्ति, इंदु मल्होत्रा

.....

न्यायमूर्ति, संजीव खन्ना

.....

नई दिल्ली;

10 दिसंबर, 2019